अमर उजाला

नई दिल्ली | मंगलवार, 26 फरवरी 2019

प्रवाह

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

किसी दोस्त के साथ गलत रास्ते पर चलने से बेहतर है कि अकेले सही रास्ते पर चलें...

- हेलन केलर

मशहूर अमेरिकी लेखिका

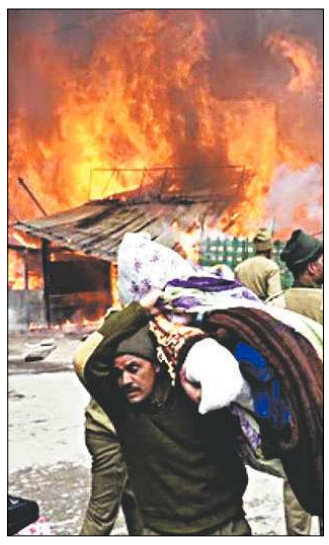

अरुणाचल की पेमा खांडू सरकार ने हिंसा के बाद गैर अरुणाचली समुदायों को स्थायी निवासी का दर्जा दिए जाने का प्रस्ताव फिलहाल टाल दिया है। राज्य के मूल निवासियों को लगता है कि इस प्रस्ताव से उनके हितों को चोट पहुंचेगी।

ध्यान से आगे बढ़ें

अरुणाचल प्रदेश की पेमा खांडू सरकार ने कई दिनों की हिंसा और विरोध के बाद छह गैर अरुणाचली जनजातीय समुदायों को स्थानीय निवासी का दर्जा (पीआरसी) दिए जाने संबंधी एक उच्च स्तरीय समिति की सिफारिशों को फिलहाल स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। राज्य सरकार ने जरा भी राजनीतिक दूरदर्शिता दिखाई होती, तो यह नौबत नहीं आती, जिसके कारण राजधानी ईटानगर सहित कई जगहों पर भारी तोड़फोड़ हुई, यहां तक कि उप मुख्यमंत्री के निजी निवास को भी प्रदर्शनकारियों ने फूंक दिया और स्थिति को संभालने के लिए केंद्र को अतिरिक्त सुरक्षा बल भेजने पड़े। पीआरसी एक नाजुक मसला है, अरुणाचल के मूल निवासियों को लगता है कि गैर अरुणाचली समुदायों को इसका दर्जा दिए जाने से उनके हितों का नुकसान होगा। दूसरी ओर जिन छह समुदायों देवरी, सोनोवाल कचारी, मोरान, आदिवासी, मिशिंग और गोरखा को पीआरसी दर्जा दिए जाने की समिति ने सिफारिश की है, वे दशकों से अरुणाचल में रह रहे हैं और इनमें से कई को पड़ोसी राज्य असम में जनजाति का दर्जा हासिल है। प्रदेश में सत्तारूढ़ भाजपा के साथ ही विपक्षी कांग्रेस भी अपनी सुविधा से इन्हें पीआरसी का दर्जा दिए जाने का समर्थन करती रही है। केंद्रीय मंत्रिमंडल में अरुणाचल का प्रतिनिधित्व करने वाले किरण रिजिजू तो पीआरसी को लेकर हुई हिंसा के लिए कांग्रेस को ही जिम्मेदार ठहराते हैं। यह नहीं भूलना चाहिए कि 2014 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस ने चुनाव जीता था, लेकिन भारी राजनीतिक उठा-पटक के बाद पेमा खांडू 2016 में अपने विधायकों के साथ भाजपा में चले गए। अरुणाचल में लोकसभा चुनाव के साथ ही विधानसभा चुनाव होने हैं, लिहाजा पीआरसी के मुद्दे के अपने राजनीतिक निहितार्थ भी हैं। राज्य सरकार ने भले ही उच्च अधिकार संपन्न समिति की सिफारिशों को टाल दिया है, लेकिन यह समिति उसी ने गठित की थी। समिति की रिपोर्ट शनिवार को विधानसभा में रखी जानी थी, लेकिन उसकी वजह से भ्रम की स्थिति पैदा हुई। मसलन, इस समिति का हिस्सा रहे ऑल अरुणाचल प्रदेश स्टुडेंट यूनियन का कहना है कि उसने तो इन समुदायों को पीआरसी के तहत सिर्फ शैक्षणिक संस्थानों में दाखिले तक की ही छूट देने की सिफारिश की थी! राज्य सरकार ने देर से ही सही, इसे टाल कर समझदारी दिखाई है, अब उसे व्यापक आम सहमति के बाद ही कोई कदम उठाना चाहिए।

तमिलनाडु के सियासी खेल में पीएमके

तमिलनाडु फिलहाल दिग्गज नेताओं के अभाव में नेतृत्व के संकट से गुजर रहा है। क्या जयललिता और करुणानिधि की जगह छोटी पार्टियां हथिया लेंगी?

आर राजगोपालन, वरिष्ठ पत्रकार

तमिलनाडु में लोकसभा के 39 सीटों के लिए अन्नाद्रमुक, भाजपा और पीएमके के बीच गठबंधन हो गया है। अन्नाद्रमुक और द्रमुक के बीच बहुत करीबी संघर्ष है। भाजपा जहां अन्नाद्रमुक के पीछे खड़ी है, वहीं कांग्रेस द्रमुक की पीठ पर सवार है। रजनीकांत ने इस संघर्ष से खुद को अलग रखा है, जबकि कमल हासन द्रमुक का खेल खराब करेंगे। एक बार जब चुनाव प्रचार शुरू हो जाएगा, तब सिने जगत इस संघर्ष से बाहर निकल जाएगा। केवल कमल हासन ही रणक्षेत्र में बाकी बचे रह जाएंगे।

अब तक के इतिहास में यह पहली बार है, जब तमिलनाडु किसी कद्दावर नेता के बिना चुनावी रण में उतरेगा। अब न तो जयललिता हैं और न ही करुणानिधि। यही वजह है कि राज्य की मुख्य विपक्षी पार्टी द्रमुक के लिए यह करो या मरो की स्थिति है, विशेष रूप से एम के स्टालिन के लिए। इसके बावजूद तमिलनाडु राष्ट्रीय संघवाद के लिए मॉडल राज्य के रूप में बना रहेगा, क्योंकि जो छोटी पार्टियां फिलहाल चुनावी अभियान में हैं, वे केवल जिला एवं राज्य के मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती हैं।

आगामी लोकसभा चुनाव में पीएमके (पत्ताली मक्कल काची) सर्वाधिक फायदे में रहने वाली पार्टी के रूप में उभरी है। इसका वोट बैंक बरकरार है। इसलिए पीएमके जैसी छोटी पार्टी द्रमुक और अन्नाद्रमुक जैसी प्रमुख पार्टियों से सौदेबाजी करती है। इसने इन दोनों प्रमुख पार्टियों से बात की, लेकिन अंततः मुख्यमंत्री पलानीस्वामी के पक्ष में जाना स्वीकार किया। पीएमके अन्नाद्रमुक के करीब हो रही है, वास्तव में इसका फायदा पलानीस्वामी सरकार को होगा, जो लोकसभा चुनाव के बाद भी सत्ता में बनी रहेगी। तमिलनाडु की राजनीतिक स्थिति अजीबोगरीब है। लोकसभा चुनाव के साथ राज्य में 21 विधानसभा सीटों के लिए भी चुनाव होंगे। दिलचस्प बात यह है कि इनमें से 10 विधानसभा सीटों पर पीएमके की मजबूत पकड़ है, क्योंकि ये क्षेत्र उसके गढ़ में हैं। अन्नाद्रमुक के लिए यही मुख्य आकर्षण है। अगर विपक्षी पार्टी द्रमुक विधानसभा की पांच से आठ सीटें जीत भी जाती हैं, तो भी लोकसभा चुनाव के बाद पलानीस्वामी की सरकार बची रहेगी। अन्नाद्रमुक को 21 विधानसभा सीटों में से 15 सीटें जीतने का भरोसा है। यही वह मुख्य आकर्षण है, जिसके चलते अन्नाद्रमुक ने पीएमके को लुभाया।

इतने महत्वपूर्ण राज्य में भाजपा और कांग्रेस कहां फिट बैठती हैं? भाजपा ने अन्नाद्रमुक के साथ गठबंधन किया है, जो हिंदुओं की भावनाओं को भी प्रभावित करता है। जयललिता के जीवन काल में ही पार्टी ने अपने घोषणापत्र में अयोध्या में राम मंदिर निर्माण का खुलकर समर्थन किया था। भाजपा को और क्या चाहिए! क्या यह उसके लिए मधुर नहीं है? अगर भाजपा तमिलनाडु में लोकसभा की दो सीट भी जीतती है, तो यह नरेंद्र मोदी के लिए बोनस ही होगा। स्पष्ट रूप से कहें, तो अमित शाह और नरेंद्र मोदी, जो शिवसेना-भाजपा समझौते के बाद ट्वीट करने के लिए उत्सुक थे, पीयूष गोयल द्वारा भाजपा के साथ अन्नाद्रमुक के गठजोड़ के बाद अपना उत्साह व्यक्त करने में विफल रहे। एनडीए की ओर से अन्नाद्रमुक के स्वागत से संबंधित कोई ट्वीट नहीं किया गया। आखिर भाजपा की ओर से इस तरह की चुप्पी क्यों? कांग्रेस के लिए भी इसी तरह की कठिन स्थिति है। लोकसभा के चुनाव प्रचार के दौरान लगभग सभी राजनीतिक दल 2009 में श्रीलंका के उत्तर पूर्वी प्रांत में हुए तमिल नरसंहार पर ध्यान केंद्रित करना सुनिश्चित करेंगे और इसके लिए कांग्रेस और यूपीए शासन पर दोष मढ़ेंगे। श्रीलंका के तमिल मुद्दे पर करुणानिधि यूपीए से बाहर हो गए थे। थोड़े दिनों पहले तक राहुल गांधी को प्रधानमंत्री पद का दावेदार बताने वाली द्रमुक ने कांग्रेस के पक्ष में अपने सुर मद्धिम कर लिए हैं।

सबसे अच्छे ढंग से प्रशासित तमिलनाडु फिलहाल दिग्गज नेताओं के अभाव में नेतृत्व के संकट से गुजर रहा है। क्या जयललिता और करुणानिधि की जगह छोटी पार्टियां हथिया लेंगी या नरेंद्र मोदी मानते हैं कि लोकसभा चुनाव के बाद वहां भाजपा या कांग्रेस के लिए जगह बनेगी? दूसरे शब्दों में, राष्ट्रीय पार्टियां कद्दावर नेताओं की जगह ले लेंगी।

डीडीएमके के नेता विजयकांत अस्वस्थ हैं। टीटीवी दिनाकरन की नई राजनीतिक पार्टी अम्मा मक्कल मुनेत्र कझगम (एएमएमके) इस संघर्ष में बच पाएगी या खत्म हो जाएगी? अन्य राज्यों की क्षेत्रीय पार्टियों को भी बातचीत में पीएमके द्वारा निर्धारित भूमिका का अनुकरण करना चाहिए, क्योंकि तमिलनाडु में सात से आठ फीसदी वोट शेयर के साथ पीएमके राष्ट्रीय पार्टियों से ऊपर आ गई है। पीएमके का वोट बैंक वास्तविक है।

तमिलनाडु की वास्तविक जमीनी स्थिति यह है कि अन्नाद्रमुक या द्रमुक किसी को भी एकतरफा वोट नहीं मिलेगा। कुल मिलाकर लोकसभा चुनाव में सभी राजनीतिक दलों को कुछ सीटें मिलने के कारण तमिलनाडु में खंडित जनादेश की आशंका है। 40 लोकसभा सीटों में से द्रमुक को दोहरे अंकों में सफलता मिलेगी। सत्तारूढ़ अन्नाद्रमुक समेत अन्य सभी पार्टियां दस से कम सीटें ही हासिल कर पाएंगी। कहा जाता है कि पलानीस्वामी की अन्नाद्रमुक आठ सीटों पर सिमट जाएगी। जबकि द्रमुक के समर्थन से कांग्रेस कम से कम चार सीटें जीत पाएगी। पीएमके तीन और दो प्रमुख दलों के साथ गठबंधन करने के बाद भाजपा को दो सीटें मिलने के अनुमान हैं। चाहे आप जैसे भी देखें, या जो भी कहें, असली फायदे में पीएमके है। और कम से कम आगामी मई तक (जब कि नतीजे नहीं आते) यह कहने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी कि द्रमुक हार रही है।

राष्ट्रीय परिदृश्य पर इसका क्या असर पड़ेगा? एक बार जब छोटी पार्टियां दक्षिणी राज्यों, खासकर तमिलनाडु में जीत जाती हैं, तो वे राष्ट्रीय राजनीति में लोकसभा चुनाव के नतीजे के बाद महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी। उनका तरीका और उनकी सनक नई दिल्ली में राज करेगी।

अंतर्ध्वनि

>> चंद्रकांत देवताले

मनुष्यता की तरह कविताई भी धंधा नहीं हो सकती

कविता या कवियों का कोई प्रवक्ता नहीं हो सकता। मैं आपको बता दूं कि भाषा की धरती मुझे कहां और कैसे मिली और मेरे नसीब में कविता का घर कैसे आया? यह घर पुरखों और मेरे बचपन, किशोरावस्था, परिवार, कस्बे, शहर के वातावरण ने दिया विरासत में। आदिवासी इलाके में जन्म, ताप्ती-नर्मदा किनारे बचपन, गांव के नाते-रिश्ते आज तक मेरे साथ हैं। बचपन में नर्मदा में छपाक-छपाक करते जो मैं बुदबुदा रहा था, घर आकर मैंने नोट किया, तो एक सहपाठी ने कहा- यह तो कविता हो गई। 1952 में हाई स्कूल पत्रिका में मेरी 'मजदूर' शीर्षक से पहली कविता छपी। तब मैं नौवीं का छात्र था। कबीर, सियारामशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि की कविता पंक्तियों ने मुझे संस्कार, सोच व जीवन-दृष्टि प्रदान की, जिनसे मेरी पक्षधरता-प्रतिबद्धता तभी तय हो गई। बाद में बुद्ध, भगत सिंह, निराला, मुक्तिबोध, परसाई आदि के कारण यह परिपुष्ट हुई। मुझे नकाबपोश कवि होना कभी नहीं सुहाया। मेरी इच्छा आज तक जीवित है कि मैं जहां भी होऊं, कवि होने की खुशबू आस-पास के लोगों को मुझसे मिले और जिन्हें चुभना चाहिए मेरे कांटे चुभें। जिस तरह मनुष्य उसी तरह कवि एक साथ। दोनों के बीच विभाजन नहीं। यह भी कि जैसे मनुष्यता पेशा नहीं हो सकती, कविताई भी धंधा नहीं हो सकती। मैं हिंदी साहित्य में एमए प्रथम श्रेणी, आठ-दस महीनों से बेकार भटक रहा था। आत्महत्या की बात मन में आती। मैंने एक कविता लिखी- 'मेरे मरने के बाद', उसमें था कि रामू पान वाले को दो सौ तीस रुपये चुका देना। यह कविता बड़े भाई के हाथ लग गई और उन्होंने मां को सुना दी। मां बहुत रोई-धोई और पान वाले का हिसाब चुकता कर दिया। संतप्त मां को देखने के बाद कोई कैसे मर सकता था, तो कविता के कारण बचा और ऋणमुक्त भी हुआ।

-दिवंगत हिंदी कवि

मंजिलें और भी हैं

>> श्वेता मोहंती

अधिकारों के जरिये बदलाव की बयार

तेलंगाना के वानपर्ति जिले की कलेक्टर बनते वक्त ही मुझे पता था कि यहां करना क्या है। यह पिछड़ा जिला कई समस्याओं से घिरा है। लेकिन मेरी प्राथमिकता में महिलाओं से जुड़ी समस्याएं सबसे ऊपर थीं। एनीमिया (खून की कमी) और मासिक धर्म से जुड़ी बीमारियां उनकी दिक्कतों में सबसे प्रमुख हैं। मेरे सामने इन्हीं समस्याओं से निपटने की चुनौती थी। पदभार संभालते हुए मैंने रुटीन काम के सिवा महिलाओं के स्वयं सहायता समूह बनाए। किशोरियों के बीच विभिन्न जागरूरकता अभियान चलाए। औरतों को एनीमिया से बचाने के लिए मैंने विशेष योजना तैयार की। सरकारी अस्पतालों में आने वाली सभी महिलाओं में चालीस फीसदी एनीमिया की शिकार पाई जाती थीं। सामान्य एनीमिया तो यहां रोग माना ही नहीं जाता था। उसे तभी चिंता का कारण माना जाता, जब तक कि वह गंभीर न हो जाए। यही कारण था कि मां बनने वाली अधिकांश औरतों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता। मैंने समाथा नाम से एक प्रोजेक्ट की शुरुआत की। इसके तहत मैंने अपने सहयोगियों की मदद से आठ हजार से ज्यादा लड़कियों के खून की जांच की। ये लड़कियां जिले के विभिन्न सरकारी स्कूलों की थीं। ऐसा नहीं है कि यह बिल्कुल नया काम था। एनीमिया जैसे मुद्दों को पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ाया जाता है, पर शायद ही कभी लोग इस पर गौर करते हों। हमारा उद्देश्य था कि इसे जन-जन तक चर्चा का विषय बनाया जाए। मासिक धर्म से जुड़ी दिक्कतें मेरी दूसरी प्राथमिकता थी। दरअसल इससे जुड़ा काम एनीमिया उन्मूलन के समानांतर चलता रहा। मैं और मेरी टीम लड़कियों को सिखाती रही कि कैसे उन्हें मासिक धर्म से जुड़ा कैलेंडर तैयार करना है। इससे उन्हें किसी भी अनियमितता या परेशानी समझने में आसानी हुई। जिले के सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को यह जिम्मेदारी दी गई कि वे अपने यहां पढ़ने वाली किशोरियों को मासिक धर्म से जुड़ी दवाएं और अन्य सहूलियतें प्रदान करें। इसके अलावा उन बच्चियों के खान-पान पर नजर रखी जाने लगी। ताकि कहीं से भी एनीमिया उनके शरीर में दाखिल न होने पाए।

मैं चाहती हूं कि गरीब-वंचित तबके के लोग भी समाज के लिए कुछ करने के काबिल बन सकें।

प्रोजेक्ट समाथा के तहत अगले चरण में जब हमने लड़कियों के ब्लड सैंपल दोबारा जांचे, तो उनमें एनीमिया से ग्रसित लड़कियों की संख्या महज चार फीसदी बची। यह हमारी कोशिशों का सुखद नतीजा था। हमें और अधिक मेहनत करने का प्रोत्साहन मिला। इस प्रोजेक्ट के अगले चरण में हम लड़कियों को कम से कम कीमत पर सैनिटरी नैपकिन मुहैया कराने के लिए काम कर रहे हैं। हमने अपने शोध में पाया कि वानपर्ति की करीब पचास फीसदी महिलाएं सैनिटरी नैपकिन इस्तेमाल नहीं करती हैं। तमाम तरह की सामाजिक मान्यताओं से लड़ते हुए हम इस समस्या से निपटने की कोशिश कर रहे हैं।

अधिकांश ग्रामीण आबादी वाले जिले में मैं छात्रों को आधुनिक शिक्षा से जोड़ने का भी प्रयास कर रही हूं। कंप्यूटर से लेकर वह हर सुविधा, जो बच्चों के लिए जरूरी है, उन्हें स्कूलों तक पहुंचाने में मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जिलाधिकारी होने के नाते मेरे पास कई ऐसे अधिकार हैं, जिनकी मदद से मैं जिले की सूरत बदलने में अपना योगदान दे सकती हूं। लेकिन मैं चाहती हूं कि गरीब-वंचित तबके के लोग भी अपने अधिकारों का प्रयोग करके समाज के लिए कुछ करने के काबिल बन सकें।

-विभिन्न साक्षात्कारों पर आधारित।

कहां जाएंगे ये आदिवासी

सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बाद 11 लाख से अधिक आदिवासी और वनवासी परिवारों पर विस्थापन की तलवार लटक रही है। जांच के दौरान एक भी जरूरी दस्तावेज पेश न कर पाने के कारण जंगल में रहने की इनकी दावेदारी खारिज कर दी गई।

देश की आबादी में आठ फीसदी हिस्सा रखने वाले आदिवासी आजादी के इतने साल बाद भी शोषित, पीड़ित और उत्पीड़ित हैं। दरअसल भारत के वन एवं वन्यजीव संरक्षण से जुड़े सरकारी कानून पश्चिम की उस अवधारणा पर आधारित हैं, जिसमें कहा गया है कि मानव और मानवेतर प्रजातियां एक साथ नहीं रह सकतीं। उसके अनुसार, जैव विविधता तभी सुरक्षित रह सकती है, जब जंगल में मानवीय हस्तक्षेप न हो। इस सोच के पीछे उन बाहरी व्यावसायिक शक्तियों का भी हाथ है, जिन्होंने जंगल, जंगल में रहने वाले जीव और आदिवासियों का भरपूर शोषण-दोहन किया है। हमारी सरकार ने अपनी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं की खातिर बिना वनों और पर्यावरण की क्षति का सही आकलन किए जिस तेजी से विकास यज्ञ में वनों के कटान और वहां रह रहे आदिवासियों को हटाने की अनुमति दी, उसका सबसे बड़ा खामियाजा वन, वनवासी और वन्यजीवों को उठाना पड़ा। ऐसी स्थिति में जंगल, जंगली जीव और आदिवासियों-वनवासियों की रक्षा की बात कैसे की जा सकती है? यदि आदिवासी नहीं रहेंगे, तो जंगल भी नहीं बचेंगे।

आज उन्हीं वनवासियों पर जंगल से बेदखली की तलवार लटक रही है। बीते दिनों सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी आदेश के तहत जंगलों में रहने वाले करीब 11 लाख आदिवासी-वनवासी परिवारों को निकालने के लिए कहा गया है, जिनका जंगल की जमीन पर दावा नहीं बनता। वनाधिकार कानून दो किस्म के लोगों को जंगल में रहने का अधिकार देता

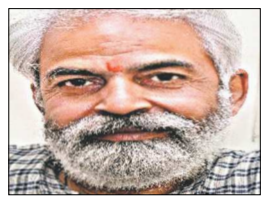

ज्ञानेन्द्र रावत

है। एक तो वे, जो आदिवासी हैं और जंगल में रहते हैं, और दूसरे, जो वनवासी हैं और वन उत्पादों पर निर्भर हैं। 2006 में बने वनाधिकार कानून की वैधता को तब कई संगठनों ने चुनौती दी थी। उनके विरोध के बाद उन लोगों की पहचान का काम शुरू हुआ, जिनकी जंगलों पर दावेदारी बनती थी। विगत नवंबर तक करीब 42 लाख लोगों ने अपनी दावेदारी पेश की थी, जिनमें से जांच के बाद 19 लाख लोगों की दावेदारी खारिज कर दी गई। दावेदारी खारिज होने वालों ने अदालत का दरवाजा खटखटाया, पर वहां से भी उन्हें निराशा ही हाथ लगी। दरअसल ये लोग जांच के दौरान 13 जरूरी दस्तावेजों में से एक भी पेश करने में नाकाम रहे। ये बेचारे दस्तावेज लाएं भी, तो लाएं कहां से। सदियों से जंगल को अपना घर मानने वाले और वहीं अपनी जिंदगी गुजार देने वाले इन वनवासियों के पास तो कुछ है ही नहीं। अदालत के आदेश का सबसे ज्यादा असर मध्य प्रदेश और ओडिशा में होगा, जहां क्रमशः साढ़े तीन लाख और डेढ़ लाख लोगों के वनाधिकार दावे खारिज हुए हैं। वर्ष 2002 से 2004 के बीच तीन से सवा तीन लाख आदिवासियों को उनके घरों से बेदखल किया जा चुका है। अब फिर वही स्थिति बन रही है। ऐसा लगता है कि विस्थापन इनकी नियति बन चुका है

आज तक कभी औद्योगिक विकास, कभी रेल लाइन बिछाने, कभी अभयारण्य बनाने, तो कभी नदी-जोड़ के नाम पर ये हमेशा अपनी जमीन से खदेड़े जाते रहे हैं। किसी भी सरकार ने इनके पुनर्वास के सवाल पर सोचना तक गवारा नहीं किया। एडवोकेसी ग्रुप कैंपेन फॉर सर्वावाइवल ऐंड डिग्निटी का आरोप है कि खुद केंद्र सरकार इस मामले में कानून का बचाव करने में नाकाम रही है। भारी संख्या में गलत तरीके से दावों को खारिज किया गया है और वन अधिकारियों ने जान-बूझकर अवैध रूप से लोगों के अधिकारों को मान्यता देने से रोकने का काम किया है। पर सरकार के लिए भी इस समस्या से निपटना आसान नहीं है।

खुली खिड़की

उपग्रहों की संख्या

भारत अपने अंतरिक्ष कार्यक्रमों में लगातार बढ़ोतरी कर रहा है, लेकिन अब भी अमेरिका और चीन की तुलना में पृथ्वी की परिक्रमा करने वाले भारतीय उपग्रहों की संख्या काफी कम है।

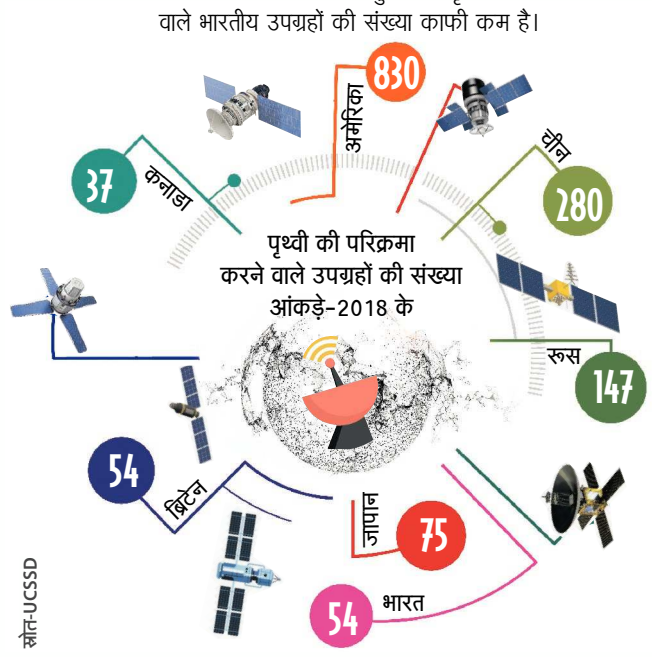

ईश्वर की छड़ी

एक नगर में एक कंजूस आदमी रहता था। उसने पूरी जिंदगी में किसी को कुछ नहीं दिया। मरने के बाद उसे नर्क में जगह मिली। वह अपनी दयनीय स्थिति पर रोता रहता था और ईश्वर से नर्क से बाहर निकालने की प्रार्थना करता रहता था। ईश्वर को उस आदमी पर दया आ गई और उसको नर्क से निकालने के उपाय खोजने लगे। ईश्वर ने चित्रगुप्त से कई बार इस संबंध में सलाह-मशविरा किया कि कैसे इस कंजूस को नर्क से बाहर निकाला जाए। चित्रगुप्त ने अपना खाता खंगालने के बाद बताया कि इस कंजूस ने कभी किसी को कुछ नहीं दिया। तभी पता चला कि कंजूस ने एक बार एक व्यक्ति को सड़ा हुआ केला दिया था। इस तरह ईश्वर को उस कंजूस को नर्क से बाहर निकालने का उपाय मिल गया। भगवान ने उसको एक छड़ी दी, जिसके सहारे वह नर्क से बाहर निकल सकता था। छड़ी पाकर कंजूस काफी खुश हुआ और उसके सहारे ऊपर चढ़ने लगा। उसे चढ़ता देख नर्क भोग रहे बाकी दूसरे लोग भी छड़ी का सहारा लेने लगे। यह देखकर कंजूस उन लोगों को नीचे धकेलने लगा। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि यह छड़ी ईश्वर ने मुझे दी है, इसलिए आप लोग इसका इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। बस फिर क्या था, कंजूस देखते ही देखते नर्क में आ गिरा और छड़ी गायब हो गई। रात में उसने सपना देखा, ईश्वर उससे कह रहे थे कि यदि तुमने अपने जीवन में किसी को कुछ नहीं दिया, तो तुम्हें भी कभी कुछ नहीं मिलेगा।

-संकलित

सत्संग

हरियाली और रास्ता

हीरे और कांच का फर्क

एक नेत्रहीन व्यक्ति की कहानी, जिसने सिर्फ छूकर असली और नकली का फर्क बता दिया।

प्रोफेसर क्लास में आते ही छात्रों से बोले, आज मैं आपको एक कहानी सुनाऊंगा। क्या आप लोग तैयार हैं? बच्चे बहुत उत्साहित हो गए। प्रोफेसर बोले, एक राजा का दरबार लगा हुआ था। पंडित, मंत्री, दीवान आदि दरबार में बैठे थे। उसी समय एक व्यक्ति दरबार में आकर कहने लगा, मेरे पास दो वस्तुएं हैं। आपको इनमें से असली और नकली वस्तु बतानी है। आज तक कोई सही जवाब नहीं दे पाया।

उसने दोनों वस्तुएं सामने पड़ी मेज पर रख दीं। वे दोनों देखने में बिल्कुल एक जैसी थीं। राजा ने कहा, ये दोनों वस्तुएं तो एक ही हैं। उस आदमी ने कहा, हां, दिखाई तो ये एक-सी देती हैं, पर हैं भिन्न। इनमें से एक हीरा है और एक कांच का टुकड़ा है। पर कोई आज तक परख नहीं पाया कि इनमें से कौन हीरा है और कौन कांच का टुकड़ा। अगर परख खरी निकली, तो मैं यह कीमती हीरा आपके राज्य की तिजोरी मे जमा करवा दूंगा। पर यदि कोई इसे नहीं पहचान पाया, तो इस हीरे की कीमत आपको मुझे देनी होगी। राजा, मंत्री और दूसरे लोगों ने चुनौती स्वीकारी, पर कोई भी हीरे की सटीक पहचान नहीं कर पाया। तभी वहां एक निःशक्त व्यक्ति आया, जो देख नहीं सकता था। उसने चुनौती स्वीकारी और थोड़ी ही देर में उसने हीरे की पहचान कर ली। पूरा दरबार दंग रह गया। सभी लोगों ने उस व्यक्ति से यही पूछा था कि आपको हीरे और कांच का पता कैसे चला? उस आदमी ने जवाब दिया सीधी-सी बात है। हम सब धूप में बैठे हैं। मैंने दोनों वस्तुओं को छुआ। जो ठंडी थी, वह हीरा था, और जो धूप में गरम हो गई, वह कांच था। प्रोफेसर बोले, ऐसा ही कुछ हमारे जीवन में भी होता है। जो आदमी बात-बात पर गरम हो जाए, वह कांच है, और जो विपरीत परिस्थिति में भी ठंडा रहे, वह व्यक्ति 'हीरा' है।

विपरीत परिस्थितियां हमें सिर्फ मजबूत बनाने के लिए होती हैं।